

॥ पद्यप्राकृतव्याकरणम् ॥

ॐ

तच्च

श्रीमत्सकलशास्त्रनिष्णातपण्डितप्र-
वररामदत्तात्मजयोधूपुरनिवासी
वृहत्कवि, विद्याभास्कर, वैयाक-
रणकेसरि, पण्डितगुरुलाल-
चन्द्रशर्मणा विरचितम् ।

भाषाभाष्यभूषितम् ।

अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकाराः ग्रन्थकर्त्रा
एकैः २५ नियमानुसारेण स्थायत्तीकृताः ।

काशी ।

भारतजीवनयन्त्रालये मुद्रितम् ।

सम्मत १९५७ ।

उपक्रम ।

सर्व प्राकृतव्याकरण के वेत्ताओं को अथ च संस्कृत शब्द शास्त्रों को तथा संस्कृत और प्राकृत काव्यकर्त्ताओं को सविनय प्रार्थना करता हूँ कि यद्यपि इस विद्यावारिभहोदधि भारतवर्ष में, प्राकृत व्याकरण के प्राचीन और नवीन अनेक ग्रन्थ रत्न प्रकाशमान हैं, तथापि उन सब के, सूत्र, वृत्ति, आदि गद्यात्मक होने से याद करने में, प्राकृत के विद्यार्थियों को विशेष कष्ट उठाना पड़ता है, और याद होने पर भी अधिक समय बीतने पर भूल जाने से सभाओं में उनको लज्जित होना पड़ता है, उक्त छात्रगण के इस असह्य दुःख को देखकर उनके सुविधा के अर्थ, मेरे पवित्र पिताजी श्रीमान् बृहत्कविविद्याभास्कर परिडित गुरु लालचन्द्रजी महाराज वैयाकरणकेसरी ने एक नवीन ग्रन्थ, जिसका कि नाम, पद्य प्राकृतव्याकरण है और उसमें महा विद्वान् श्री हेमचन्द्राचार्य, श्री चण्डाचार्य, और श्री महाकवि वररुचि आदि के मत को लेकर दो वर्ष पूर्व परिश्रम करके बसन्ततिलका छन्दोबद्ध ७६ संस्कृत श्लोकों में बनाया है । और उसमें यह विशेषता रखी है कि श्लोक १ का भाषा टीका करके सन्धि विभक्ति आदि की साधनिका लिखी, श्लोक २ के नीचे लिख दी गई है । जिस से प्रत्येक मनुष्य, श्लोकों को कष्टरहित करके भाषा टीकों को स्वयं समुक्त कर सकेगा । इसमें प्राकृत व्याकरण का विद्वान् बनकर, ६५ आगम ३२ सूत्र तथा नाटक

दि में जो प्राकृत विषयक अर्थ हैं शीघ्र समुक्त सकेगा । इस बात को सर्व साधारण जानता है कि पाठकगण जितने समय से, गद्य को कण्ठस्थ करता है उस से चतुर्थांश परिश्रम से, पद्य, अर्थात् श्लोक को कण्ठगत कर सकता है । और श्लोक रचना में ऐसा चमत्कार है कि कण्ठस्थ होने से फिर विस्मृत नहीं होता है, इसलिये संस्कृत तथा प्राकृत के पाठकों के लिये विशेष करके जैन धर्म प्रचारक, सभाओं के विद्यार्थियों के अर्थ यह पद्यबन्ध प्राकृतव्याकरण बहुत ही उपकारक और हर्षदायक है, इसलिये प्राकृत और संस्कृत के विद्वानों से मेरी विनय है कि आप महोदय, मेरे पिताजी के अल्प लेख को देखकर अवश्य आदर सम्प्रदान करके उन्हें और भी अधिक उत्साही करेंगे । भर्तृहरिणी ने कहा है : मोद्धारो मत्सरमलाः । परंच आप उनमें से नहीं हैं । यही हेतु मेरी याचना का है । यद्यपि मेरे पिताजी ने इस ग्रन्थ के सर्व विषयों को विज्ञापन में छपवाकर सर्व भारत में प्रसारित कर दिये थे तथापि उक्त विषयों को संक्षेप से नीचे लिखकर आप महाशयों को विदित करता हूँ ॥

१—प्रथम उपदेश में श्रीमान् सत्यस्वरूप परमेश्वर की स्तुति, पूर्व समय के प्राकृत ग्रन्थों के आचार्यों की प्रशंसा और उनके उपकारों का वर्णन, ग्रन्थकर्ता के वंश का वर्णन और प्राकृत के भेद तथा विभक्तियों तथा शब्दों के रूपों का वर्णन और प्रत्यय, आदेश, युष्मद्-अस्मत् शब्द के कार्य आदि ॥

२—दूसरे उपदेश में स्वरों के सर्वक्रम तथा विभक्तियों का व्यतिक्रम तथा प्रत्यय आदि बहुत कृत्य ॥

३—तीसरे उपदेश में व्यंजनों का प्रकरण-वर्णन, वर्ण व्यतिक्रम, वर्णलोप, वर्णआगम, वर्णद्वित्व, इत्यादिक विषय ।

४—चतुर्थोपदेश में भाषान्तर के अर्थात् मागधी, शौरसेनी, पेशा-
चिकी आदि भाषाओं के कृत्य और ट्यक् २ मुनियों के अर्थात्
हेमचन्द्राचार्य, चण्डाचार्य, महाकवि बररुचि, आदि के मतकार्य,
फिर हेमचन्द्राचार्य मत से तीनोंही लिङ्गों में इकारान्त, उकारान्त,
ऋकारान्त, शब्दों के रूप आदि और भूमण्डल के विद्वानों से
प्रार्थना करके ग्रन्थ समाप्त किया है ॥

इन चार उपदेशों युक्त प्राकृत व्याकरण को संस्कृत श्लोकबद्ध
भाषा टीका सहित ऐसा चमत्कारी बनाया है कि इतने छोटे से ग्रन्थ
में बहुत विषय प्राकृत का भर दिया है अर्थात् दूसरे और तीसरे उं-
पदेशों में जो स्वर और व्यंजनों का इस कदर वर्णन है कि इन दोनों
कार्यों से-शब्द-रूप-धातुरूप-प्रत्ययवाचक तद्धित और कृदन्त-कारक आ-
दि की सावनिका सरल रीति से हो सकेगी और छात्रगण के वास्ते
बड़ा भारी उपकार श्रीमान् परब्रह्म परमात्मा का किआ हुआ मेरे
पिताजी के हस्तगत हुआ है इसलिये शिष्ट विद्वानों के आदरणीय
होना उचित है। अथ काव्यकर्ताओं से प्रार्थना है कि प्रथम तो मेरे
पिताजी ने १५ वर्ष पर्यन्त काशीपुरी में निवास करके, व्याकरण, न्याय
ज्योतिष, साहित्य, भेषज्य प्रभृति शास्त्राध्ययन किया उस परिश्रम
के तथा श्रीपरमेश्वर की कृपा के हेतु से उन्होंने संस्कृत के ग्रन्थ ज्यु-
चिलिप्रमोदिका १ सेनापतिकीर्तिचन्द्रोदय २ मणियशोदीपिका ३
रदान्योक्तिकल्पद्रुम ४ मोक्षमूलरयशोदीपिका ५ कच्छनेरशक्रीर्तिच-
न्द्रोदय ६ भास्कर यशोदीपिका ७ जगद्भूषण ८ विपुलयशोदीपिका
९ यशवन्तयशोदीपिका १० विटनीयशोदीपिका ११ छत्रपतियशो-
दीपिका १२ न्यायसमुच्चय १३ पद्यव्याकरण १४ (पद्यकौमुदी) पद्य-

चन्द्रिका १५ भोजनविवेक १६ और आमिषसमीक्षा १७ आदि बनाये हैं उनमें से कितनेक प्रसिद्ध भी हुए हैं । और भाषा कविता विषयक ग्रन्थ, रामचन्द्रोदय १ अर्जुनपर्व २ प्रतापपचीरी ३ पोलो-शतक ४ सुखदेवहत्तरी ५ हरजीवतीसी ६ प्रतापगुणचन्द्रोदय ७ हनुमनकरुणावतीसी ८ सीताकरुणावतीसी ९ रामचन्द्रकरुणावतीसी १० यावूअष्टक ११ रसजीतपचीरी १२ नाहरगुण पंचाशिका १३ ईश्वरप्रार्थना १६ यशवन्तयशोदीपिका १५ और तलत यशोदीपिका १६ आदि बहुत से बनाये हैं । उक्त पिता जी की विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर, श्रीमान् अनेक शुभ गुण शोभायमान राज-राजेश्वर महाराजाधिरान श्री वैकुण्ठवासो महाराजा जी श्री १०० श्री यशवन्तसिंह जी बहादुर-जी सी. ऐस्. आई. मरुवरनरेश्वर ने उनको पग में पहनने को सुवर्ण और पालकी आदि प्रतिष्ठा को दो दफे इनायत फरमाई और साम्प्रति श्रीमान् अखण्डप्रतापी राज-राजेश्वर महाराजाधिरान महाराजा जी श्री १०० श्री सरदार सिंह जी बहादुर भी उसी प्रकार अनुग्रह फरमाते हैं । और उक्त श्रीमान् के कारा साहेब श्रीमन्महाराजाधिरान कर्नल, सर, प्रतापसिंह जी बहादुर-जी. सी. ऐस्. आई । ऐल्. एल्. डी. सी. बी. एडी. सी. श्रीमान् हिन्सायल्-हाईनर दी प्रिंस आफ वेल्स बहादुर-और मुसाहेब आला राज मारवाड़ भी विद्या को कदर फरमाते रहते हैं । और इस विद्याही की कदर फरमाने में श्रीमान् अखण्ड प्रतापी भारतदिवकर महाराजाधिरान श्री १०० श्रीसरफतेसिंह बहादुर-जी. सी. ऐस्. आई. मेवाडनरेन्द्र ने दो दफे लिखत इनायत फरमाई मय मानपत्रों के । और इसी तरह श्रीमान् महाराजा बहादुर श्री १०० श्रीभावनगर

श्रीमान् महाराजा साहेब बहादुर श्री १०८ श्रीमैसोर बङ्गलोर, श्री-
 मान् महाराजा बहादुर श्री १०८ श्रीसाहूद्वयपती बहादुर. जी. सी.
 एस्. आई. कोल्हापुर नरेश्वर ने तथा श्रीमान् श्री १०८ श्री सरवी
 मानी जाम साहेब बहादुर-के. सी. एस्. आई जामनगर ने तथा
 श्री मान् श्री १०८ श्री सवाई महाराज साहेब सर खैंगारजी बहा-
 दुर-जी. सी. आई. ई कछनरेश्वर ने तथा श्री मान् स्वर्गवासी
 महाराजा जी श्री १०८ श्री रणजीतासिंह जी बहादुर के. सी. एस्.
 आई. रतलाम ने तथा श्रीमान् स्वर्गवासी महाराजा श्री बलदेवसिंह
 बहादुर आवागढ़ ने तथा श्रीमान् महाराजाधिराज महाराजा श्री १०८
 श्री हीरासिंह बहादुर-जी. सी. एस्. आई. नाभा ने तथा श्री मान् म-
 हाराजा श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री १०८ श्री प्रतापसिंह जू देव
 बहादुर-के. सी. आई. ई ओड़छा ने तथा श्रीमान् आनरेनिल
 महाराजा श्री १०८ श्री प्रतापनारायणसिंह बहादुर. के. सी. आई ई
 अपोव्यानरये ने तथा श्रीमान् महाराजा साहेब श्री १०८ श्री ठाकुर
 साहेब बालसिंह जी बहादुर षड़वांण ने तथा श्रीमान् महाराजासाहेब
 श्री १०८ श्री लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर-के. सी. एस्. आई दरभंगाने
 तथा श्रीमान् दीवांण बहादुर मणिमार्ई जशभाइ. सी. एस्. आई.
 लेट प्राइम् मिनिटर बड़ोदा छेट आदि ने मेरे पिता जी को विद्या की
 प्रसन्नता पूर्वक लिखते इनायत फरमाई हैं । और श्रीमान् महाराजा
 साहेब बहादुर श्री १०८ श्री जयपुर-कोटा-तालभूपाल-टूंक-लूनावाड़ा
 मुहाबिल-मण्डी-नयपाल-नाहन आदि ४८ रियासतों से मान्यपत्र मिले
 हैं और लिटरेरी सोसाईटी कलकत्ता तथा पौली इण्डियन-काशी के
 पण्डितों से श्रीमत्परमहंसपरिभ्राजकाचार्य स्वामी महाराज भास्करानन्द

सरस्वती जी आदि से सुवर्ण के पदक तथा मान्यपत्र मिले हैं और भी कई विद्यास्थानों से राष्यपदक मिले हैं और अभी मेरे पिता जी की निर्मित पद्यव्याकरण अर्थात् पद्यकौमुदी ग्रन्थ पर प्रमत्त होकर उक्त स्वामी जी ने सर्व राजकीय कर्मचारियों की समा करके व्याकरणकेसरी का विशेषण नाम सुवर्णपदक सहित मय मानपत्र के सम्प्रदान किया है । श्री मती महानिर्मतिमती रानरानेश्वरी भारतेश्वरी श्रीमलिका महाराणी अखण्ड ऐश्वर्यवती के किये हुये भारतीय प्रजा के उपकारों को संस्कृत श्लोक बद्ध रचकर उनकी एक पुस्तक ज्युबिलीप्रमेदिका नाम की जो मोंके प्रथम ज्युबिली के उत्सव पर बनाई और उसके वृत्तांत सहित एक तार प्रार्थना का श्रीमान् याइंमुरोय लार्ड डफरिन् धावा बहादुर के मुलाहिने में भेजा । जवाब में उक्त गवर्नर जयल बहादुर ने एक हुकुम उक्त पुस्तक के बारे में मार्केत श्रीमान् एनेण्ट गवर्नर जयल बहादुर रानपूताना के छेट जोधपुर में भेजा था फिर ४ पुस्तकें मार्केत राज्य जोधपुर के होकर श्रीरोसिडेण्ट के तथा श्रीमान्-ए-जी-जी के द्वारा श्रीमान् वाइस राय बहादुर के मुलाहिने में गुजरी । जवाब में एकरवलीता उक्त श्रीमान् का छेट में आया उस में हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट ने मेरे पिता जी को धन्यवाद दिया है । और फिर वे पुस्तकें हिन्दुस्तान में तथा लन्दन, अमेरिका, फ्रांस, जर्मन् आदि देशों के योग्य तथा विद्वानों को भेजी गईं जवाब में श्रीमती भारत रानरानेश्वरी के चिरंजीव श्रीमान् हिज रायल हाइनेश् प्रिंस आफ वेल्स से तथा द्वितीय प्रिंस श्रीमान् डूचक आफ एडिम्बरा से तथा तृतीय कुमार श्रीमान् डूचक आफ कनाट महोदय से धन्यवादपत्र मिले हैं । तथा राइट आनरे

बिल् श्रीमान्, लार्ड रिपिन् तथा लार्ड क्रास तथा लार्ड सालस्वरी, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिटिन, लार्ड डफरिन्, आवा, लार्ड लांसडोन्, लार्ड रावर्ट, लार्ड रे आदि महाशयों से मान्यपत्र मिले हैं । तथा सरकारीविद्याभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर, एफ मोक्षमूलर भट. ओक्सफोर्ड से तथा डाक्टर फिसिल् जरमन् से तथा प्रोफेसर अर्थर वेनिस् कारी से तथा मिष्टर विदौन अमेरीका से तथा महाविद्वान् ग्रिफिय कोटगिरी आदि विद्वानों से मानपत्र मिले हैं । और बम्बै, कच्छ देहली, अंजार आदि शहरों के विद्वानों ने सभायें करके मानपत्र दिये हैं । ऐसे विद्वान् का बनाया हुआ यह ग्रन्थ हे उसको कृपा की पवित्र दृष्टि से अवलोकन करेंगे और इस ग्रन्थ की कविता जो के व्याकरण के सूत्र वृत्त्यर्थ न विगड़ते, छन्द को भी सही रक्खा है, । परन्तु बहुत ही कठिनता शब्द और छन्द दोनोंसही रखने में किसी २ जगह पर देखकर कहीं २ लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु मानकर अथच सस्वर को निस्वर एवं निस्वर को सस्वर मानकर निर्वाह करके छन्द को विशल्प किया है । इसलिये मेरी प्रार्थना हे कि जिससमय इस ग्रन्थ को देखते २ और आनन्दित होते २ कहीं २ पूर्वोक्त विषय देखने में आजावें उस समय में प्रथम तौ साहित्यशास्त्र के रूल को विचारें और फिर महा कविकालीदासकृत कुमारसम्भव काव्य के इस श्लोक का ध्यान कर लें ॥

(एका हि दोषो गुणसन्निपाते ।

निमज्जतीन्द्रोः किरणेष्विवाङ्कः ॥)

तो से आशा रखता हूँ कि इस पद्यप्राकृतव्याकरण ग्रन्थ को अवश्यही आप महोदय आदर सम्प्रदान करम कि इस छोटे से ग्रन्थ

मैं कैसा चमत्कार बताया गया है कि जिस में महाश्रम से बचकर अत्यल्प श्रम से प्राकृत ग्रन्थों को भली भाँति समुक्त होगा। ये कैसा लाभदायक ग्रन्थ विद्यार्थियों के अथवा विद्वानों के लिये बनाया गया है मेरी प्रार्थना में कोई असंगत वाक्य बाल्यचांचल्य से लिखा गया हो तो मैं क्षमा मांग कर अत्र मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे पवित्र पिता जी की कृति का सुकृत सदा सर्वदा स्थिर रहे ॥

सर्व संस्कृत और प्राकृत के विद्वानों का दीन शुभचिन्तक किङ्कर

परिषद-सिवदानमञ्ज जोधपुर-मारवाड़ ।



प्राकृतपद्यव्याकरणम् ।

वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सत्यम्प्रणम्य परमेश्वरमादितत्त्वं ।

तापत्रयोपशमनं कमनीयरूपम् ॥

या प्राकृते मुनिवरैरुदिताऽत्र वाक्तां ।

ग्रन्थाम्यहं गिरमलं सरलैस्सुपद्यैः ॥ १ ॥

टी० श्रीमान् सत्यस्वरूप परमेश्वर, आदिकारण और तीन तापों के निवारक मनोहर मूर्ति को प्रणाम करके, जो वाणी पूर्वज मुनिवरों ने प्राकृत विषयक शब्दशास्त्र में कहीं है, उनको परिपूर्ण सरल श्लोक बना कर के गुम्फित करता हूँ ॥ १ ॥

ये हेमचन्द्रवररुच्यभिधानपूर्वाः ।

ये चण्डमेघविजयप्रमुखास्तमासन् ॥

पूर्वं परोपकृतये कृतिनोऽपि तेऽथ ।

घृन्दारका इत्र चरन्त्यमराऽभिधयाः ॥ २ ॥

टी० पूर्व समय में श्रीहेमचन्द्राचार्य, और महा कवि बररुचि से आदि ले करके तथा श्रीमान् चण्डाचार्य और श्रीविह्वन्मण्डलमण्डन मेघ

विजयमूर्धर प्रभृति प्रादुर्भूत होकर परोपकार में मुकृती हुये थे वो २॥

ग्रन्थानरोक्तिविषया विहितास्तु पूर्वैः ॥

तद्बोधनो भुवि बुधधनसूत्रगाथाः ।

बुद्ध्यन्त आगमचंयाननुनाटकाद्याः ॥ ३ ॥

टी० सत्य उपकार करने के कार्य में कृतकृत्य समयवाले पूर्वोक्त आचार्यों ने प्राकृत उक्ति के अनेक ग्रन्थ रचे हैं, उन ग्रन्थों के बोध से इस पृथ्वी पर मनुष्य परिदित होकर, कठिन सूत्रों ३२ की गाथाओं के और ४५ आगम समूह के तथा नाटक प्रभृति के अर्थ को अच्छी तरह से जान जाते हैं ॥ ३ ॥

दिष्टेकलेरिति किलाद्यतने तनुत्रैः ।

न्यूनान् गुणैर्बहुजनान्मातिभिर्वयोभिः ॥

गद्यं यतः प्रपठनं कठिनं तु तेषां ।

विज्ञाय विज्ञमनसो मनसा विचेरुः ॥ ४ ॥

टी० वर्तमान कलियुग के समय में अभेद्य कवचरूपी उत्तम गुणों से, बुद्धि से, तथा आयुः से हीन बहुत से मनुष्यों को और उक्त कारणों से, गद्यात्मक ग्रन्थों को पढ़ने में उनके कठिनता को देख कर उक्त मुनिवर अपने चित्त में विचार करने लगे ॥ ४ ॥

तेषां महागुणभृतां दययाऽहमद्य ।

पद्यात्मकं प्रचुरप्राकृतमातनोमि ॥

श्लोकैर्वसन्ततिलकोदितवृत्तवयै—।

श्लोत्रप्रपाठनविधौ शिवदं यथा स्वात् ॥ ५ ॥

टी० उक्त महागुणोंवाले महर्षियों की दया से जिससे विद्यार्थियों के प्राकृत पढ़ने में सुखदायक होवे वैसा, वसन्ततिलका छन्दोबद्ध श्लोक रचना पूर्वक, प्राकृतपद्यव्याकरण को मैं विस्तृत करता हूँ ॥ ५ ॥

पट्टशास्त्रवित्सकलसद्गुणगुम्फगेयः ।

श्रीरामदत्तमतिमान् नृपमाननीयः ॥

विद्वत्समाज इह सत्कृत एकसभ्यो ।

विप्रेष्वभूत्प्रवरपुष्टिकरेषु विशः ॥ ६ ॥

सन्मान्यपर्वतमुनेः शुचिसन्ततौ यः ।

श्रीवल्लसंज्ञकपुरोहितजातिजीनः ॥

श्रीतरुत्तसिंहनृपतेरिह शिष्टदेव्याः ।

व्यासो बभूव हरिभक्तिरतो महात्मा ॥ ७ ॥

तस्यात्मजास्त्रय उदारमतेर्वभूवु- ।

ज्यैष्ठौ तु तेषु शिवशङ्करनामधेयौ ॥

ताभ्यां कनिष्ठ इह पद्यविधौ प्रवृत्तो ।

विद्वत्पदाम्बुजजनो द्विजलाक्षचन्द्रः ॥ ८ ॥

टी० पट्टशास्त्र के वेत्ता और सम्पूर्ण सद्गुण समूह कर्क गेय और महाराजाओं के माननीय और यहां विद्वानों के समाज में सत्कार-योग्य मुख्य सभासद श्रीयुत रामदत्त जी शास्त्री बड़े उत्तम बु-

विमान् पुष्करादिनां मे विज्ञ ह्ये मे ॥ ६ ॥ उक्त परिद्वत जी प्र-
 पने पूर्वत, परंशुनि की शक्ति सन्नि मे यथा पुष्करिणो की ज्ञानि मे
 प्रतिष्ठित थे, और श्रीमान् राजानेश्वर महाराजाधिराज स्वर्गवर्मा म-
 हागजा जी श्री १०० श्रीनतनासिंह जी महादुर जी. सी. एम्. आर्.
 मरुवरानेन्द्र की पाटनी श्रीमती महाशालीनी श्री १०५ श्रीवदाराशो-
 वत जी साहिब के स्यास जी थे, और श्रीहरिमन्दिरत महात्मा थे ॥ ७ ॥
 उक्त परिद्वत जी उग्ररुद्रि के तीन पुत्र हुये. उनमें से श्रीयुत शि-
 वदत्त जी शास्त्री और श्रीयुत गङ्गरनी ये दो बड़े पुत्र और इन दोनों
 से छोटा पुत्र जो कि इस प्राकृतव्याकरण की पद्य रचना करने में प्र-
 युक्त हुआ और सब विद्वानों के शरण कमल का दास, लालचन्द्र
 नाम का है ॥ ८ ॥

आशान्वितोऽस्मि निजचित्तउपेन्द्रतोऽहं ।

सोऽयं श्रमस्सफलतां मम चेष्यतीह ॥

सस्त्राकृतीयविषयोक्तिसुबांधवृहये ।

स्वल्पश्रमेण पठनाय च पुस्तकेऽस्मिन् ॥६॥

श्री० में परमेश्वर से नित्य आराधना है कि इस पुस्तक में जो
 मेरा परिश्रम है वह प्राकृतविषयक पुस्तकों में अत्यल्प परिश्रम से
 पढ़ने पूर्वक, विद्यार्थियों का मुकृत है उसके लिये सफल होनायगा ॥ ६ ॥

गद्यात्मकेषु किल वीर्घतरेषु सस्तु ।

यस्त्राकृतोक्तिविषयेष्वमितेषु तेषु ॥

शब्दार्णवप्रसरणे पिहितोद्यमानां ।

पद्यसूत्रं विरचयामि मुदे शिशुनाम् ॥ १० ॥

टी० यद्यपि इस भारतभूमि में बड़े लम्बे चौड़े प्राकृतव्याकरण शास्त्र बहुत हैं, तथापि उनके गद्यात्मक होने से उन ग्रन्थों में शब्द समुद्र को तरने में उद्यमहीन हो जानेवाले विद्यार्थियों के हर्ष के वास्ते पद्य अर्थात् श्लोकबद्ध प्राकृतव्याकरणरूपी (प्लव) अल्प नौका, रचना हुई ॥ १० ॥

लोपः क्वचिद्भवति सन्धिरपि क्वचित्स्यात् ।

वर्णैर्विपर्यय इह क्वचिदेव शास्त्रे ॥

अन्त्यादिमध्यनिलयेषु तथाऽऽगमोऽपि ।

लक्ष्यस्सदैव विहितो मुनिभाषिताद्धे ॥ ११ ॥

टी० प्राकृतव्याकरण में किसी जगह पर लोप, किसी स्थान पर सन्धि, किसी पर वर्णविपर्यय और किसी जगह पर, आदि, मध्य, और अन्त में आगम होते हैं, परन्तु ये विधि पूर्वाचार्यों के सुभाषित पदों की सिद्धि के अनुकूल हैं ॥ ११ ॥

त्रेधास्ति प्राकृतमिदं गदितं मतिज्ञै- ।

स्तेष्वायमत्र किल संस्कृतयोनि संज्ञम् ॥

ख्यातं तु संस्कृतसमं मुनिभिर्द्वितीयं ।

देशीप्रसिद्धमिति तद्विहितं तृतीयम् ॥ १२ ॥

टी० प्राकृत के तीन भेद, बुद्धिमानों के कहे हुये हैं, उनमें प्रथम भेद, संस्कृतयोनि नाम का, दूसरा भेद संस्कृत सम नाम का, और तीसरा भेद, देशी प्रसिद्ध नाम का, मुनिप्रणीत हैं ॥ १२ ॥

देशीप्रसिद्धमिति यत्तदनेकधाऽस्ति ।

देशोक्तिनामनिकरैर्नियमैर्नितान्तम् ॥

कर्णाटकान्धवराष्ट्रमुखैरशेषैः ।

पर्यायशब्दसहितैर्घनवर्णमूलैः ॥ १३ ॥

टी० पूर्वोक्त देशी प्रसिद्ध नाम का तीसरा भेद, अनेक प्रकार से देशों की उक्ति के नाम समूह के नियमों से नित्य प्रसिद्ध है, अर्थात् कर्णाटक, अन्ध, और, महाराष्ट्र प्रभृति बहुत से देशों की उक्ति से और पर्याय शब्दों सहित जिनमे कि बहुत वर्णरूपी मूल है, जैसा कि भृ-
ह्मरि अजा का नाम है । इल्लपुलिन्दाण, व्याघ्र का नाम है । तुङ्गी
रात्रि का नाम है ॥ १३ ॥

स्त्रीपुंनपुंसकमिति त्रिदशोक्तितुल्यं ।

तत्प्राकृते त्रिविधलिङ्गमुसन्ति सन्तः ॥

तेभ्यः परे मुनिमतेन सुरोक्तिकल्पाः ।

स्वाद्या भवन्ति खलु सप्तविभक्तयोऽपि ॥ १४ ॥

टी० प्राकृत में तीनों ही लिङ्ग संस्कृत के तुल्य होते हैं, अर्थात् पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग होते हैं, उक्त तीनों लिङ्गवाचक शब्दों से परे सदैव मुनि मत से सु आदिक विभक्तियें आती हैं । इन तीनों लिङ्गों के शब्दों के रूपों के उदाहरण माधनिका सहित नीचे लिखता हूँ, यथा पुल्लिङ्ग वाचक, यज्ञ शब्द के रूपों को लिखता हूँ, प्रथमाविभक्त के रूप. जग्णो. जग्णा. जग्णा । द्वितीया के रूप. जग्णं जग्णा. जग्णे. । तृतीया जग्णं. जग्णेणं. जग्णेहिं. जग्णेहिं. जग्णेहि । चतुर्थी. जग्णस्त. जग्णाणं. जग्णाहं । पञ्चमी. जग्णाउउ. ज-

रणाउ. जरणार्हि. जरणार्हितो. जरण्णा. जरण्णेहितो. । पृष्ठी. जरणस्त.
 जरण्णाणं. जरण्णाहं । सप्तमी. जरण्णे. जरणम्मि. जरण्णसुं. जरण्णोसु. ।
 सम्बोधन. जरण्ण. जरण्णो. जरण्णा. । अब यज्ञ शब्द के रूपों की सा-
 धनिका को लिखता हूँ । श्लोक ४६ य, को ज, हुवा तव. जज्ञः अब,
 ज्ञ, के घर्णविश्लेष करने से । ज. ज्. जः । इस व्यवस्था में श्लोक ४६-
 ४७-वर्ग पञ्चम. व्यञ्जन, ज, का लोप हुवा तव. जज्जः । इस व्य-
 वस्था में श्लोक ५० ज, को, ण हुआ फिर श्लोक ५१ संयोग के अ-
 वरोपवर्ण को द्वित्व हुआ. तव. ज-ण्-ण-अः । फिर श्लोक ३२ विसर्ग
 को, ओ, हुवा तव, ज-ण्-ण-अ-ओ हुवा तव फिर, श्लोक २८ स्वरों
 के स्वरपरे होने से लोप हुआ तव, जरणो । ये प्रथमा का एकवचन
 सिद्ध हुआ । अब द्विवचन में पूर्ववत् जण्णञ्जञ्ज । इस व्यवस्था में
 श्लोक ३३ द्विवचन को बहुवचन हुआ तव, जण्णञ्ज, जम् । फिर श्लोक
 १७ जम् को पूर्व स्वर होने से । जण्णञ्जञ्ज । श्लोक २८ स्वरों के
 स्वरपरे होने से सन्धि हुई । जरण्णा । द्वितीया के प्रथम वचन में ।
 जरण्णञ्जम् । श्लोक २८ स्वरों का स्वरपरे होने से लोप हुआ । जरण्णा
 अम् । श्लोक ३२ व्यञ्जन को अनुस्वार होने से । जरण्णं । द्वितीया
 के द्विवचन को बहुवचन होने से । जरण्णञ्ज । का । जरण्णश्म् । इस
 व्यवस्था में एक पक्ष में श्लोक १७ शम् को पूर्वस्वर का आदेश हुआ
 तव । जरण्णञ्ज । फिर श्लोक २८ सन्धि होने से । जरण्णा । द्वितीय
 पक्ष में । जरण्णश्म् । श्लोक १८ शम् को ए होने से. जरण्ण ए ।
 फिर श्लोक २८ स्वर का लोप होने से । जरण्णे । तृतीया के एक व-
 चन में । जरण्ण, टा । इस व्यवस्था में श्लोक १५ टा को, ण, हुवा ।
 तव-जरण्ण, ण । फिर श्लोक ३१ अन्यस्वर अन्य के स्थान में होने
 से. ए. होने से जरण्णञ्ज ३५ व्यञ्जन को अनुस्वार का आगम होने

से । जरणोरं । अब तृतीया के द्विपचन में । जरणम्पां । इसमें श्लोक ३३ द्विपचन को चतुर्वचन होने से । जरणभिष् । फिर श्लोक १९ भिष् को, हिं, आदेश होने से । फिर श्लोक ३१ स्वर को, ए, होने से । जरणोहिं । द्वितीय पक्ष में श्लोक ३५ अनुस्वार का लोप हुआ । तब जरणोदि । अब चतुर्थी विभक्ति । जरण, डे । इस में श्लोक ३६ चतुर्थी को षष्ठी विभक्ति का आदेश हुआ तब, जरण, डम् । फिर, श्लोक १० डम् को, स्त, हुआ तब-जरणस्त । अब-जरण, आम् । तब श्लोक १५ आम् को, ख, हुआ फिर, ह, विकल्प से हुआ फिर श्लोक ३२ व्यञ्जन को अकार का आगम हुआ फिर श्लोक २० सन्धि हुआ । फिर श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम हुआ तब । जरणारं । जरणार्हं । फिर पञ्चमी के एकवचन में-जज्ञान्-जगखान् । के तकार का श्लोक १६ ओ-आदेश । तब । जरणौउ । उ आदेश । तब । जरणौउ । हिं आदेश । जरणोहिं । हितो आदेश । जरणोहितो । लोप पक्ष में । जरणो । फिर श्लोक ३१ स्वर को ए होने से । जरणोहितो । षष्ठी विभक्ति के रूप उपर लिखे हुये चतुर्थी को षष्ठी आदेश की तरह जानलेना । अब सप्तमी विभक्ति के प्रथम वचन में । जरण, टि । इस व्यवस्था में श्लोक १० डि को, ए, और भि होने से फिर श्लोक २० स्वरलोप हुआ तब, जरणे । जरणम्भि । बहुवचन में । जरणं, सु इसमें श्लोक ३१ स्वर को, ए, हुआ तब, जरणेषु । पक्ष में श्लोक ३२ अनुस्वार आगम होने से, जरणेषुं । इसी प्रकार से पुल्लिङ्गवाचक अकारान्त शब्द अर्थात् षट्-षट्-राम-कृष्ण-वीतराग-देव-आदिक जानलेना । अब खल्लिङ्गवाचक आवन्त मात्रा शब्द के रूपों को लिखता हूँ । प्रथमा विभक्ति के रूप । मत्ता. मत्ताओ. मत्ताउ । द्वितीया । मत्तं. मत्ताउ. मत्ताउ. मत्ता । तृतीया । मत्ताए. मत्ताहिं. मत्ताहि. मत्ताहिं. मत्ताहिं । चतुर्थी ।

मत्ताए. मत्ताणं. मत्ताहं । पञ्चमी । मत्ताए. मत्ताहितो । षष्ठी । मत्ताए ।
 मत्ताणं. मत्ताहं । सप्तमी । मत्ताए. मत्तासु. मत्तासुं । सम्बोधन । हेमत्ता.
 हे मत्ताओ. हे मत्ताउ. हे मत्ता । अब इन सातों विभक्तियों के रूपों की
 साधनिका को लिखता हूँ । यथा प्रथमा के एकवचन का रूप. मात्रा । इ-
 समे श्लोक ३१ संयोग परे होने से ह्रस्व होने से. मत्रा । फिर श्लोक
 ४६ वर्ग से परे अवर्ग्य व्यञ्जन का लोप हुआ तव, मत् आ । फिर
 श्लोक ५२ त को द्वित्व हुआ, फिर श्लोक २८ सन्धि हुआ तव. मत्ता ।
 अब द्विवचन को श्लोक ३३ बहुवचन हुआ । तव । मत्ता ओ । इ-
 सका । मत्ता-जस् । फिर श्लोक १६ जम् को-ओ-आदेश हुआ तव.
 मत्ता ओ । उ-आदेश हुआ तव. मत्ता उ । लोप में मत्ता । द्वितीया के
 प्रथम वचन का । मत्ता-अम् । ऐसी व्यवस्था में श्लोक ३८ आकार
 लोप. और इसी से सन्धिकार्य तथा श्लोक ३२ व्यञ्जन का अनुस्वार
 हुआ । तव । मत्तं । अब. मत्ता-शम् । में श्लोक १६ पूर्ववत्. मत्ता ओ ।
 मत्ता उ । मत्ता । अब तृतीया के प्रथम वचन में. मत्ता-या । इसमें श्लोक
 १६ टा को, ए, होने से मत्ताए । मत्ता-भिम् । इसमें श्लोक १६ भिम्
 को, हिं, आदेश होने से । मत्ता हिं । फिर पक्ष में श्लोक ३५ अनु-
 स्वार के लोप होने से । मत्ताहि । ये दो रूप भिम् के हुये । अब श्लोक ३३
 चतुर्थी को षष्ठी आदेश होने से । मत्ता-डस् । इससे श्लोक १६ ए
 होने से । मत्ताए । अब, मत्ता-आम् । इसमें श्लोक १५ ए हुआ । और
 श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम तव । मत्ताणं । पक्ष में आम् । को
 श्लोक १५ ह हुआ, तव, मत्ताहं । पञ्चमी के एक वचन में । मत्ता-डति ।
 इसमें श्लोक १६ ए होने से मत्ताए । मत्ता-भ्यस् । श्लोक १६ पूर्ववत् ।
 मत्ताहितो । षष्ठी पूर्ववत् । सप्तमी । मत्ता-डि । श्लोक १६ ए होने
 से । मत्ताए, मत्तासु । मत्ता सुं । पूर्ववत् । सम्बोधन प्रथमावत् ॥ इसी

तरह से-अंत्रा. माया. मेधा । अजा । एडका । अश्वा । इत्यादिक अत्र-
 वन्त शब्द जान लेना ॥ अब नपुंसक लिङ्गवाचक फल शब्द का रूप
 लिखता हूँ । प्रथमा । फलं फलाणि । फलाई । द्वितीया । प्रथ-
 मावन् । शेष रहे तृतीयादिक शब्द यज्ञ शब्दवत् जान लेना । अब इ-
 नकी साधनिका को लिखता हूँ । फल-सु-इत्सका फलम् । इसमें श्लोक ३२
 व्यञ्जन लोप. फिर. श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम होने से । फलं ।
 अब-फल-जम् । श्लोक ५० ज, को, ण हुआ और श्लोक ३२ व्यञ्जन
 का लोप होने से । फल-ण । फिर श्लोक ३२ अ, का, आगम हुआ ।
 तव । फला-ण । फिर श्लोक ३० अन्यस्वर के स्थान में इ होने से ।
 फलाणि । फिर श्लोक ३५ अनुस्वार का आगम । तव फलाणि ।
 इसमें श्लोक ४५ ल, से, परे व्यञ्जन, ण, का लोप होने से ।
 फलाई । फिर श्लोक ३६ अर्ध अनुस्वार होने से । फलाई । द्वितीया ।
 फलं । पूर्ववत् । अब-फल-राम् । इसमें । श, का, स हुआ श्लोक ५०
 से । फिर श्लोक ४६ स, को, ह, हुआ । फिर श्लोक ५० ह, को र,
 हुआ । फिर श्लोक ५० र, को, ण, हुआ । फल-ण । बाकी साध-
 निका जम् की तरह जान लेना । फलाणि । फलाई । फलाई शेष विभ-
 क्तियें यज्ञ शब्दवत् साधनिका समुजनी

लिङ्गेषु तेषु भवति कचिदत्र शास्त्रे

यद्व्यत्ययस्तु तदनागमसागमस्य ॥

आमोण इत्यपि विकल्पत एव होऽस्य ।

टाणोरह आम इह तस्य तु संख्यकायाः ॥१५॥

टी०—इन तीनों लिङ्गों के शब्दों में कहीं २ लिङ्ग व्यत्यय भी

होता है जैसा कि देव शब्द पुलिङ्ग वाचक भी प्राकृत में नपुंसकवत् हो जाता है यथा. देवाणि । देवाइं । देवाइँ ॥ आगम रहित-वा. आगम सहित आम् को, एकार होता है । और हकार विकल्प से होता है । लिङ्ग से परे-टा-को, ए, होता है। संख्या से परे आगम सहित वा रहित आम् को, एह होता है. जैसा कि । त्रिगहं । चउगहं । पञ्चगहं । यथा. त्रयाणां । चतुर्णां । पद्मानां । इनके रूप होते हैं ॥१५॥

लिङ्गात्परस्य च भिसोन्निलये हि मेव

लिङ्गाद्भ्यसो गृह इतीह परस्य हिन्तो ।

एत्वं स्त्रियां भवति चेत्यपि टादिकानाम्

स्युर्वे स्त्रियां जसशसोरपिओउलोपाः ॥ १६ ॥

टी०—लिङ्ग से परे भिस् को, हिं, आदेश होता है, और लिङ्ग से परे भ्यम् को, हिन्तो, आदेश होता है । स्त्रीलिङ्ग में. टा. डसि. डम्. और, डि वचन को, ए, होता है । स्त्रीलिङ्ग में जम्-और शम् को-ओ-उ आदेश और लोप होते हैं ।

शिण्द्वित्रिशब्दपरयोरिह जसूशसोर्वे

पूर्वस्वरो भवति पुंसि. तु जसूशसोश्च ।

णो जसूशसोर्भवति पुंसि ङसेरपीह

णः स्सश्च पुंसि भवतीतिङ्सस्सदेव ॥ १७ ॥

टी०—द्वि और तृ शब्द से परे जम् और शम् को, शिण्, आदेश होता है. जैसा कि द्वि शब्द द्विवचनान्त के औ को जम् आदेश होकर उक्त आदेश होने ने. डुरिण । विशिण । तृ शब्द के जम्-शम्

परे होने से उनको उक्त आदेश होने से तिगिय । पुल्लिङ्ग में वर्तमान
जम् और शम् को पूर्व स्वर का आदेश होता है । जैसा कि देवा । अग्नी ।
गुरु पुल्लिङ्ग में जम् और शम् को, ण, का आदेश होता है और ङ सि
को भी होता है । जैसा कि. मुणियोपस्स । पुल्लिङ्ग में ङम् को, श,
होता है और, स्म भी होता है । जैसा कि. मुणियो रूपं । मुणियोस्स रूपं ।

चादात्परस्य च उत्तः स्तइहेव शोन
एम्मिश्चडेर्भवत इत्युभयो हि पुंसि ।
आदुत्तरस्य च शसः किल पुंसि नित्य-
मेत्वं भवत्यपि यथा मुनिनोक्तमत्र ॥ १८ ॥

टी०—चकार कान से अकार से परे जम् को द्वित्व सकारही
हो जाता है, एकार नहीं होता है । पुल्लिङ्ग में-इ वचन को, ए, आ-
देश और, भि, आदेश होते हैं । पुल्लिङ्ग में अकार से परे शम् को,
ए, आदेश होता है मुनियों के मत से ॥ १८ ॥

हिं हिं तञ्चोउरितिलोपविधिश्च पंचाऽ-
प्याऽऽदेशजस्यङ्सआतइमेप्रदिष्टाः ।
सेःस्यात्तुसर्ववचनेषु सदैवपण्ड्याम्
गेहे द्वयोस्तदिदमोरिहशास्त्र एव ॥ १९ ॥

टी०—पद्यमी के आदेश तकार को-ओ-उ-हिं-हिं तो, और लोप होते
हैं । तत् और इदम् शब्द को पद्यी विभक्ति के सर्ववचनों और सर्व
लिङ्गों में-से आदेश नित्य होता है जैसा कि-तस्याः रूपं । से रूपं । तयोः
रूपं । से रूपं । अस्याः रूपं । से रूपं । इत्यादिक जान लेना ॥ १९ ॥

स्याद्युष्मद्ः प्रकरणंत्वत ऊर्ध्वमत्र

तं तुं तुवंतुहमथस्तुममस्य सौवै ।

स्युस्तेविभक्तिसहितस्य तु युष्मदोऽप्याऽऽ

देशाश्च पंचनितरां मुनिभिःप्रणीताः ॥ २६ ॥

टी०—इसके आगे युष्मद् शब्द का विधान है । विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, तु, परे होने से-तं-तुं-तुवं-तुहं-तुमं ये पांच आदेश मुनियों के कहे हुए होते हैं । जैसाकि-त्वं दृष्टः । तुमं दिव्यो । इसी तरह और भी ॥ २० ॥

गेहे जसीह खलु युष्मद् एव तुम्हेः

तुब्भेः परे शसिविभक्तिमतोऽस्यनित्यम् ।

स्युर्युष्मदोऽप्यमिपरे सविभक्तिकस्याऽऽ

देशास्त्रयोमुनिमतेन तुष्टुमन्तम् ॥ २१ ॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को जम् परे होने से, तुम्हे, आदेश होता है । जैसाकि-यूयं मनुष्याः शूराः । तुम्हेमाणुस्ता मूरा । विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को शम् परे होने से, तुम्हें, आदेश नित्य होता है । जैसाकि, युष्मान् मनुष्यान् भणामि । तुब्भेमाणुस्ता भणामि । विभक्ति सहित युष्मद् को अम् परे होने से । तुष्टु । तुमं । तं । ये तीन आदेश होते हैं ॥ २१ ॥

स्युष्टापरं च किल युष्मद् एत एवाऽऽ

देशास्तुमेतइतएत इतीह वेदाः ।

यस्याऽपि तोऽस्यनिलये सविभक्तिकस्याऽऽ
 देशास्तु युष्मद् इमेऽसितूर्यसंख्याः ॥ २२ ॥
 ज्ञयास्तुमाहिमितितोन्त्यतइंस्तुमाओ
 हितोस्तुमादिरिहशास्त्रकृता प्रयुक्ताः ।
 स्युर्युष्मदोऽप्यमि परे तुहतुश्भक्तुम्हा
 स्त्वामीति युष्मद्इहालय एव तुम्हम् ॥ २३ ॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, या, परे होनेसे-ते-तुमे-
 तद्-तए-चार आदेश होते हैं । युष्मद् मन्वन्वि यकार को तकार का
 आदेश होता है । विभक्ति सहित युष्मद् को पञ्चमी के एक वचन ड
 सि परे होने से वक्षमाण । तुमाहिं । तुमाहितो । तुमाओ । नइं तो ।
 ये चार आदेश होते हैं । विभक्ति सहित युष्मद् को, पष्ठी का एक व-
 चन डम् परे होने से-तुह-तुम्ह-ओर-तुम्ह-आदेश होते हैं । विभक्ति सहित
 युष्मद् को आम् परे होने से-तुम्हं आदेश होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

डोयुष्मदः किल विभक्तिमतस्तइः स्यात्
 सर्वास्वपीह तु विभक्तिपुभेः सदैव ।
 सन्त्यस्मदःप्रकरणोत्वनऊर्ध्वमेते
 हं चाहमत्रहउमग्निश्मिताःपरसौ ॥ २४ ॥

विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को, डि, परे होने से, तद्, आदेश
 होता है । विभक्ति सहित युष्मद् को सर्वविभक्तियों में, भे, आदेश
 होता है । जैसा कि-त्वंभृणु । भेषुण । त्वांभणामि । भेषणामि । त्त-

याकृतं । भेक्यं । अत्र अस्मद् प्रकरण में विभक्ति सहित अस्मद् शब्द को, मु, परे होने । हउं । हं । अहं । येतीन आदेश होते हैं ॥ २४ ॥

अम्हे जसीति मममीहृगृहे ऽस्मदोऽपि ।
जस्वत्परेशसि विभक्तिमतोऽस्य नित्यम् ॥
स्यादस्मदः किलविभक्तिमतस्सदेवाऽऽ ।
दशौतुटापरउभाविह मेमएस्तः ॥ २५ ॥

टी०—विभक्ति सहित युष्मद् शब्द को जम् परे होने से अम्हे । आदेश होता है । विभक्ति सहित अस्मद् को अम् परे होने से मं-आदेश होता है । विभक्ति सहित अस्मद् को शम् परे होने से अम्हे आदेश जम् की तरह होता है । विभक्ति सहित अस्मद् को-टा-परे होने से । मे । मए । ये दो आदेश होते हैं ॥ २५ ॥

स्याद्वैडसाविहविभक्तिमतोमइन्तो
चाऽम्हादिहिन्तइतितस्यपरेभ्यसीह ।
अत्रास्मदोऽसि च मइभमहावुभौस्तः
त्वम्हं विभक्तिसहितस्यसदाऽऽमितस्य ॥ २६ ॥

टी०—विभक्ति सहित अस्मद् शब्द को पञ्चमी का एकवचन अर्थात् ऽसि परे होने से । मइं तो । आदेश होता है । उक्त अस्मद् को म्यस् परे होने से । आम्हाहिन्तो । आदेश होता है । उक्त अस्मद् को षष्ठी का एक वचन अर्थात् जम् परे होने से । मह । और ममम्मा-ये दो आदेश होते हैं । उक्त अस्मद् को आम् परे होने से फिर अम्हं । आदेश होता है ॥ २६ ॥

हावस्मद्ः किलविभक्तिमतो महर्षे
 भश्चाऽस्मदोऽपिखलु सप्तविभक्तिषु स्यात् ।
 इत्थं मयामुनिऽविभक्तिविधानमत्र
 पद्यैः प्रणीतमितिभूरिमुदेशिशूनाम् ॥ २७ ॥

टी०—विभक्ति सहित अस्मद् शब्द को-दि वचन परे होने से ।
 मह । आदेश होता है । अस्मद् को सर्व विभक्तियों में । भे । आदेश
 होता है । इस प्रकार से सातों विभक्तियों के विधान को विद्यार्थियों
 के बहुत हर्ष के लिये मैंने श्लोकबद्ध वर्णन की है ॥ २७ ॥

इति धीप्राकृतपद्यव्याकरणे बृहत्कविविद्याभास्कर परिदत्त गुरु लाल-
 चन्द्र वैयाकरणकेसराविरचिते, विभक्तिविधानात्मकोनामप्रथमोपदेशः ।

इस विभक्तिविधान नाम के प्रथमोपदेश के अन्तर्भूत युष्मद् और
 अस्मद् शब्द के रूपों को लिखता हूँ, प्रथम युष्मद् शब्द के ये रूप हैं ।
 प्रथमा विभक्ति के रूप । तं । तुं । तूं । तुवं । तुमं । तुमैं । तुहं । बहु-
 वचन के । तुम्हे । तुम्ह । द्वितीया । तुए । तुमं । तं । बहुवचन में ।
 तुम्हे । तुम्हे । तुम्हे । तृतीया में । तुमे । तइ । तए । तुए । बहुवचन
 में । तुम्हेहिं । तुम्हेहिं । तुम्हेहि पद्यमी । तुमाहिं । तुमाहिं तो । तुमाओ ।
 तइंतो । बहु । तुमाहितो । पद्यी । तुह । तुमम् । तुम्ह । तुहं । बहु ।
 तुम्हं । तुम्हाण । तुम्ह । सप्तमी । तइ । तुमए । तए । तुम्भि । तुम्भि ।
 तुहम्भि ॥ अब अस्मद् रूप के शब्द लिखता हूँ ॥ हे । अहं । हउं ।
 बहु । भे । अम्हे । अम्हो ॥ १ ॥ मं । ममं । बहु । अम्हे । अम्हा ।
 अम्ह ॥ २ ॥ मे । मए । मया । बहु । अम्हेहिं । अम्हेहिं । अम्हाहिं ॥ ३ ॥

मइतो । मइत्तो । मत्तो । बहु । अम्हेहितो । अम्हाहितो । अम्हेहितो ॥५॥
 मह । महं । ममम् । ममम् । बहु । अम्हं । अम्ह । अम्हे । अम्हो ॥६॥
 मइ । मए । अम्हम्भि । महम्भि । बहु । अम्हसु । अम्हसु ॥ ७ ॥
 इनकी साधनिका सुगम रीति से श्लोकों के कृत्य से हर एक विद्वान
 समझ सकेगा । इसलिये पिष्ट पेप समझ करके मैंने यहां रूपमात्रही
 दिखाये हैं ॥ २७ ॥

पद्यैरथः स्वरविधानमयोच्यनेऽत्र ।

यत्सन्धिकृत्यमुभयोः पदयोर्नितान्तम् ॥

स्यात्प्राकृतेऽपि किल संस्कृतवत्स्वराणां ।

स्युर्वै स्वरे प्रकृतिलोपकसन्धयश्च ॥ २८ ॥

टी०—अब स्वर प्रकरणात्मक द्वितीयोपदेश को श्लोकरचना से
 वर्णन करता हूँ प्राकृत में जो परस्पर दो पदों में सन्धिकार्य होता है।
 वह संस्कृत उक्ति के तुल्य होगा । स्वरों को स्वर परे होने से ।
 प्रकृति । लोप । और सन्धि । शिष्टाचार के अनुसार यथा रुचि होते
 जैसाकि । इह, अञ्ज इ । इहञ्जइ । इत्यादि ॥ २८ ॥

संपृक्तवर्णविहितः स्वरउद्धृतस्सो ।

लुप्तपि वर्ण इह यस्स्वर एव शेषः ॥

स्यादुद्धृते स्वर इहापि परे स्वरस्य ।

सन्धिर्न तत्र नितरां प्रवदन्ति विज्ञाः ॥ २९ ॥

टी०—व्यञ्जन संपृक्त स्वर, अर्थात् व्यञ्जन के लोप से अवशेष
 रहा स्वर-वह । उद्धृत संज्ञक कहलाता है । स्वर का, उद्धृत स्वर
 परे होने से सन्धि नहीं होता है ये विज्ञ लोगों का कहा हुआ । यथा.
 ग अणं । गन्धकुटी । गन्ध उडी ॥ २९ ॥

अथेऽपि वर्यं इह नास्ति परं च सन्धिः ।

शास्त्रं युवर्णं विहितस्य तु प्राकृतेऽत्र ॥

संयोग एव पर एति परं स्वोऽपि ।

पूर्वस्वरस्तु किञ्च लोपमिदं प्रयोगे ॥ ३० ॥

टी०—इच्छे और उपर्ण को अस्वरर्णि अर्थात् निगतरर्णों परे न होने से सन्धि नहीं होता है । संयोग है परे में जो ऐसे स्वर परे होने से पूर्व स्वर का नियम लागू होता है । यथा-भवति अर्थात् होइ अथा ॥ यनाद्वय । भगवो ॥ ३० ॥

संयोगकाक्षरपरेऽस्ति लघुः स्वराणां ।

मन्यस्वरोऽन्यनिलये भवतीह नित्यम् ॥

स्युर्ल स्वरागिरिति चास्ति षट्शर्णगेहे ।

रूपाणि सिद्धशशि १८ कानि घृहस्पतेऽत्र ॥ ३१ ॥

टी०—स्वर्णों को संयोगाक्षर परे होने से ह्रस्व होता है । जैसा कि कायं । कर्म । कर्म । कर्म । इन्द्रियं । इन्द्रियं । अन्यस्वर अन्य स्वर के स्थान में पूर्व जो के कर्म के अनुकार होता है । जैसा कि । कर्तव्ये । कायर्णं । सतनं । मुः । अज्ञात । इज्ञाता । वश्ये । वच्छि । वेष्मि । षट्शर्ण के स्थान में स्वर्णों का आदेश तथा, रि, आ, य होते हैं । यथा. गृहं । वपं । दरशते । दीनर् । षट्शर्णं । रिणं । घृहस्पतिशब्द के १८ रूपा होते हैं । यथा. १ मिमस्तर् १ भुमस्तर् २ भयस्तर् ३ विहर् ४ युहर् ५ वहर् ६ निमर् ७ भुमर् ८ भयमर् ९ सुहर् १० विहर् ११ वहर् १२ निमर् १३ भुमर् १४ भयमर् १५ विहर् १६ युहर् १७ वहर् १८ ॥ ३१ ॥

एतद्युहे भवति चैः पुनरइस्सदैव ।

ओरौ त इत्यपि तथाऽउरिहप्रदिष्टः ॥

एदाद्रलोपविधयो हि विसर्गगेहे ।

स्युर्व्यञ्जनस्य च तथाऽऽगमत्रिंदुलोपाः ॥३२॥

टी०—एत् के स्थान में, ए आदेश और, अइ, आदेश होते हैं। यया। वैताज्यः। वेप्रहो। वें। वइरं। ऐश्वर्यं। अइतरियं ॥ औत् के स्थान में ओ और अउ होते हैं। यमा, ऊनवं। औतइं। सौर। सउते। विसर्ग के स्थान में, एत्, औत्, रं, और लोप होते हैं। यया. कतरः गच्छति। कमेरे गच्छइ। अन्तःपुरं। अन्ते उरं। देवः ब्राह्मणः। देवो बंधणो। पुनः अपि। पुणरपि। सः एप। स एत। व्यञ्जन को अकार का आगम, अनुत्वार, और लोप होते हैं। यया। कर्म। कर्मं। र्भे। सम्भं। इत्यादि ॥ ३२ ॥

त्यादेभवेद्विवचनं बहुवाक्यरूपं ।

स्यादेस्तथैव किल सर्वविभक्तिपूक्तम् ॥

पष्टीवदेव नितरां विहिता चतुर्थी ।

आर्षे द्वितीयविषया प्रथमाऽस्ति नित्यम् ॥३३॥

टी०—स्यादि तथा त्यादि विभक्तियों के द्विवचन को बहुवचन आदेश होता है। यथा। देवो। देवा। ब्राह्मणो। बंधणा। नयनेरो-भेते। एयणसोहन्ते। प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति, पष्टी के रूपा से होती है। यथा। नमोऽग्निभ्यः। एमोऽग्निभ्यः। नमोऽगुरुभ्यः। एमोऽगुरुभ्यः। यथा। चतुर्विंशतिभिः जिनवराः तीर्थकरामे प्रसीदन्तु। चतुर्विंशतिभिः जिनवरातित्ययामे प्रसीदन्तु ॥ ३३ ॥

आर्षे तृतीयविषया खलु सप्तमी स्यात् ।

वर्णाः प्लुताश्चङनञा न हि प्राकृतेस्युः ॥

ऐऔस्वरौ तत ऋवर्णलृवर्णकौ द्वौ ।

न प्राकृते शपअरेव नसन्ति चैते ॥ ३४ ॥

टी०—आर्ष में तृतीयाविभक्ति सप्तमी विभक्ति होती है । यथा । तस्मिन्काले । तेणं कालेण । प्लुतसंज्ञक वर्ण और ङ । न । ञ । और ऐ. औ. ऋ. ऋ. लृ. लृ. ये प्राकृत में नहीं होते हैं । श. प. अः । ये भी तीन प्राकृत में नहीं होते हैं ॥ ३४ ॥

एदौत् स्वरौ भवतएव मतेन केषां ।

स्यातां स्ववर्ग्यविषयो तुङञौ तथैव ॥

स्यादागमः प्रकृतिरर्द्धमयं कचिच्चा- ।

नुस्वार कस्य भवति कचिदत्रलोपः ॥ ३५ ॥

टी०—एत् और औत् स्वर, ये किसी आचार्य के मत से होते भी हैं । यथा । केत । । कैअवं । म्मोन्दर्य । सोअरिचं । ङ. और, न । स्ववर्ग्यसंयुक्त हो तो ये भी प्राकृत में होते हैं । यथा । अकारः । अङ्कारो । अजियं । अजनिनं । अनुस्वार का किसी जगह पर आगम और किसी जगह पर प्रकृतभाव किसी जगह पर अर्द्धानुस्वार और किसी जगह पर लोप होते हैं । यथा । वाङ्मणाः । वंमणाः । संघः । संगो । देवैः । देवेहिं । यत्तीहि ॥ ३५ ॥

गावैर्हृगोर्भवतिचैव विधौत्रयोऽथ ।

नित्यं भवन्ति णइचेयच्चियाइइऽर्थे ॥ वा

स्याद्वा अलोप इतिचाऽस्यऽपि युग्मयोस्त ।

एकादशाः किल भवन्ति च पूर्वकाले ॥

तू आणवेप्पिणुविआंप्पिणु तृणमुख्याः- ।

त्तुत्ताद्दु इत्यपि तथात्तुमिहैव चच्चा ॥

अर्थे सदैव मुनिचण्डमतेन सर्वे ।

मत्वर्थएव भवतस्तु किलाऽऽलइल्लो ॥३६॥३७॥

टी०—गो शब्द को गावी आदेश होता है । यथा । गाई । गा-
वीओ । गावी । गावी । गावीए । गावीहिं । गावीहिंते । गावीखं । गा-
वीसुं । गावीसु । एव शब्द के अर्थ में, एइ । चैय । और चिय । आदेश
होते हैं । यथा । गत्याएव । गइणइ । मत्याएव । मइणइ । तनएव ।
तंनेव । सएव । सचिय । अपि. और असि. इन दोनों के अकार का
लोप होता है । यथा. । शूरः अपि । सूरौवि । त्वमसिअत्र । तंसिइह ।
पूर्वकाल अर्थ में । तु । ता । च्चा । द्दु । त्तु । तृण । तूआण । ओ ।
वि । प्पिणु । वेप्पिणु । ये ग्यारह यथा रुचि होते हैं । यथा । वंदित्वा
सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान् । वंदित्तु सव्वे विजिणन्दचन्दे । वन्दित्ता । भुञ्जी ।
भुञ्ज्या । कृत्वा कइ । भोत्तुं । भोत्तूण । का उआण । वंदित्वा । वं-
दिऊ । वंदेवि । वंदेप्पिणु । पणवेप्पिणु । मतु के अर्थ में, आल, और
इल्ल, प्रत्यय होते हैं । यथा । जटामान् । जटालो । जाडिल्लो ॥ ३६॥३७ ॥

स्युर्ववतोः किल मतोश्चदशैव नित्यं ।

ते प्रत्ययाः मुनिमतेन यथा क्रमेण ॥

मेल्लोह्ल आलउइ रामणमत्तवत्तो ।

इत्तात्वएवं गदितामयकेह पथे ॥ ३८ ॥

टी०—यत् और मत् के अर्थ में दृश्यप्रत्यय अर्थात् इत्त । उत्त । अत्त । इत् । आभय । वत्त । मा । मत्त । इत्त । और आनु । होते हैं । यथा । रोमान् । सोदित्तो । विहारवान् । विआरुत्तो । श्रद्धावान् । सद्वालो । ऐहवान् । ऐहालू । गर्ववान् । गव्विरो । धनवान् । धणमणो । धणवत्तो । हगुशान् । हगुनत्तो । मानवान् । माणइत्तो ॥ ये प्रत्यय पूर्व मुनियों के मत से भैंने श्लोत्वद्ध कहे हैं ॥ ३० ॥

इल्लोल्लकाविति तु तत्र भवेऽर्थएवं ।

तत्राऽपरधार्गृहइहेव भवेच्च हेट्टः ॥

तातावकाविनि तु तावतएव नित्यं ।

जाजावकाविह च यावत इत्यपिस्तः ॥३१

टी०—तत्र भव अर्थ में इत्त । और उत्त । प्रत्यय वत्त । यथा । ग्रामेव । ग्रामिन्तो । पुरेभव । पुर्णिन्तो । अधः के स्थान आदेश होता है । यथा । अधोऽव । हेडडित्तो । तावत् शब्द और, ताव, आदेश और, यावत् शब्द को, जा, और, जाव, होते हैं । यथा । तावत् पाणि । तावाअइ । तावत्करिष्यति । हिद । यावद् मविन्यति । गाडेऽरिहि । यावद् भणति । जावमणइ ॥

स्युर्व्वतस्तदुपमानविधौ पिवेवो ।

चार्थे विद्यद्यवजहाविवसप्तसंख्याः ॥

आत्वं भवेद्विहगृहेनदऽवाऽपयोर्व्वे ।

खुःस्यात् खलोस्तु नितरामिह प्राकृतेऽपि ॥३०

टी०—उपमान अर्थ में, वत्, शब्द को । पिव । इव । विव । विम । ख । व । आर, नदा । ये सात आदेश होते हैं । यथा ।

न्दवत् । चन्द्राविधि । चारात् । चातिना । कनलवत् । कर्तवित् ।
 प्रीप्सवत् । गिष्ठीवित् । सागरात् । मायवत् । शेनस्यवत् । शेनस्तव ।
 संलवत् । संलजहा । अत्र और अन के स्थान में, ओ, होता है । यथा ।
 अवशित् । ओशीत्यं । अतत्तित् । ओसारिभ्रं ॥ एतु शब्द को, तु,
 आदेश होता है । यथा । खजुगहं । सुगम्कतयं ॥ ४० ॥

स्याद्वर्त्तमान इह चार्थविधौ यदाऽऽन-

स्तस्यार्थ इत्यपितकार इह प्रदिष्टः ॥

यत्प्राकृनेणवरिरेव भवेत्तथाऽऽनं ।

तयार्थेणवरुकेवलकेऽर्थ भाजि ॥ ४१ ॥

टी०—वर्तमानार्थक आन प्रत्यय के अर्थ में तकार होता है ।
 यथा । नियमानं । भिज्जंतं । कथ्यमानं । कहिज्जंतं । साध्यमानं । सा-
 हिज्जंतं । एवरिआनन्तर्ष अर्थ में । एवरु केवल अर्थ में ॥ ४१ ॥

स्याद्व्ययदच्छुडुत्थिच्छ्रिग्न थूथ् ।

कुटनाविधौ दडवडस्तु भवेत्त्रगयाम् ॥

चेतस्ततो गमन ऊर्द्धमुखस्य डवडव ।

ह्यापादपूरण इजे रपिचाऽऽययंजि ॥ ४२ ॥

टी०—यदि को, छुट्टु । निन्दाविधि में द्विच्छ्रि और थूथ् । शीघ्र
 अर्थ में, दडवड । अति वेग से ऊर्द्धमुखसे इधर उधर गमन में डव
 डव । आपादपूरण में इजे । एव अर्थ में नि अव्यय होता है ॥ ४२ ॥

एवार्थेण उणमत्र चणावईह ।

णाई तथाजणि जणूतमणुश्च सप्त ॥

स्यातामभोजिमतिमो तु यथा तथेऽपि ।

हादेश्णय तदियस्त्वितिशब्द कस्य ॥४३॥

टी०—इय अर्थ में. एउ । एं । गाई । गाए । जणि । जणु । मणु । ये सात प्रत्यय होते हैं । यथा. दामि । इत्यदिक जानलेना । यथा शब्द को. निम । और तथा शब्द को निम आदेश्य होते हैं । यथा । यथा भवति । निम होई । तथा करिव्यामि । तिमगाक्षिमि । इति शब्द को, इय, आदेश्य होता है । यथा । इतिष्व । इयएय ॥ ४३ ॥

स्यात्प्रत्ययस्तगुहैव तु भावकेऽर्थे ।

प्रायोऽकार इह चायुर्नईक्षणीयः ॥

चाऽनाद्यसंज्ञकमयस्य तु नस्य नित्यं ।

मित्थं तु पूर्णमिहतस्वरसंविधानम् ॥४४॥

टी०—भाव अर्थ में, तगु, प्रत्यय होता है । जैसा कि, आमस्य-भाव । आमत्तणं । नगरस्यभाव । एयरत्तणं । तीर्थकरस्यभाव । तिज्ज-यरत्तणं । स्वर से परे असंयुक्त और अनादि नकार को बहुत करके ढकार होता है । जैसा कि । संहननं । संहडणं । संवडणं । संहणणं । इस प्रकार से स्वरों का विधान समाप्त भया ॥२॥—॥ ४४ ॥

इति श्रीपद्यप्राकृतन्याकरणे, वृहदक्षविनिष्कभास्कर परिदत्त गुरु लाल-चन्द्र वैयाकरणकेसरीविरचिते, विभक्तिविधानात्मको नाम द्वितीयोपदेशः ॥

यद्व्यञ्जनप्रकरणं मुनिभिः प्रणीतं ।

ग्रन्थामि पद्यनिकरैरिहपद्यशास्त्रे ॥

हाद्वेयवौपरगतावितिलोप संज्ञौ ।

यद्व्यञ्जनं च सत्रले भ्यउपैति लोपम् ॥४५॥

टी०—मुनियों के कहेहुये प्राकृतसम्बन्धी व्यञ्जनप्रकरण को श्लोक रचनात्मक करके पद्यप्राकृतव्याकरण में रचता हूँ । हकार से परे यकार और वकार का लोप होता है । यथा । मुह्यते । मुभभए । स । व । ल । से परे व्यञ्जन का लोप होता है । यथा । स्वयं । सयं । स्वर्ग । समां । श्रोतव्यं । सोमन्वं । इत्यादि ॥ ४५ ॥

लुग् व्यञ्जनं भवति वर्गपरेऽपि पूर्वं ।

वर्गाथमेव किलसेपरएव लोप्यम् ॥

वर्गात्परं स पर मेव विकल्पतोऽत्र ।

यद्वर्गपश्चम मितीह तु लोपमेति ॥ ४६ ॥

टी०—वर्गपरे होने से पूर्व व्यञ्जन का लोप होता है । यथा । शक्तः । सत्तो । रक्तं । रत्तं । भुक्तं । भुत्तं । सृष्टं । पुठं । उत्कृष्टं । उक्तिष्ठं । वर्ग के आद्य व्यञ्जन का लोप होता है, सकारपरे होने से । यथा । वृक्षः । वक्षो । क्षमा । खमा । मत्सरः । मच्छरो । ईप्सितं । इच्छिन्नं । वर्ग से परेया सकार से परे वर्ग के पञ्चम व्यञ्जन का लोप विकल्प से होता है यथा । ज्ञानं । खाणं । यन्नं । जत्तं । लक्ष्मणः । लक्खणो । इत्यादिक जान लेना ॥ ४६ ॥

वर्गात्परञ्च तदवर्ग्यविधं लुगेव ।

स्याद्वेपरे भवति दस्य लुगेव वाऽत्र ॥

वा लोपमेति तु षकारपरष्टकारो ।

लुग् व्यञ्जनेभ्य इति पूर्वगतोऽप्यधोरः ॥४७॥

टी०—वर्ग से परे अकार्य व्यञ्जन का लोप होता है । यथा । सौख्यं । सुखं । शक्रः । सको । ह्रीवः । कीयो । षकार परे होने से, ढकार का लोप विकल्प से होता है । यथा द्दारं । वारं । विकल्प में दारं । देरं । दुवारं । षकार से परे ढकार का विकल्प से लोप होता है । उत्कृष्टं । उक्तं । उक्तिष्ठं । समग्र व्यञ्जनों से पूर्वस्थ, या, अधस्थ रकार का लोप होता है । यथा । अर्कः । अको । तक्रं । तकं । मूर्खः । मुखो । न्यप्रोधः । शिगोहो । इत्यादि ॥ ४७ ॥

वर्गोऽवप्रथम १ पावक ३ योर्गृहेद्वि २ ।

तूर्यो ४ सदैवभवतः क्रमतोद्वयोर्व ॥

वर्गोऽवाऽग्नि ३ चतुरोः ४ प्रथम १ द्वितीयो २ ।

गेहे तृतीय इह च प्रथमस्य नित्यम् ॥४८॥

टी०—वर्गों के प्रथम और तृतीय व्यञ्जनों के स्थान में यथा क्रम से द्वितीय और चतुर्थ व्यञ्जन आदेश होते हैं । यथा । मास्करं । म-
कखरो । निश्चयं । शिच्छञ्ज । दुष्टः । दुठो । स्तम्मः । थम्भो । खम्भो ।
मुखं । मुहं । वर्गों के तृतीय और चतुर्थ व्यञ्जनों के स्थान में यथा
क्रम से प्रथम और द्वितीय व्यञ्जन आदेश होते हैं । यथा । नगरं ।
नकरं । मार्गणः । मकणो । मेघः । मेखो । जर्जरं । चच्चरं । मदनः ।
मतनो । प्रथम व्यञ्जन के स्थान में तृतीय व्यञ्जन आदेश भी होता है ।
यथा । एकं । एगं । पिताची । पिताजी ॥ ४८ ॥

हस्याद् गृहेऽपि च सदाघधभाऽक्षराणां ।

स्थानेऽपि सस्य नितरांखल्ला भवन्ति ॥

गेहेऽपि यस्य भवतीह ज एव नित्यं ।

मोवागृहे भवति वै पवयोरपीह ॥ ४६ ॥

टी०—घ। घ। और, म, के स्थान में, हकार होता है। यथा। मेघः। मेहो। माधवः। माहवो। वृषभः। वसहो। सकार के स्थान में ख। छ। और। ह। आदेश होते हैं। यथा। भिन्ना। भिक्त्वा। प-रमुखः। छम्मुहो। पापाणः। पाहाणो। दश। दहो। यकार के स्थान में जकार आदेश होता है। यथा। यौवनं। जुब्बणं। सूर्यः। मुज्जो। यात्रा। जत्ता। पकार और, वकार, के स्थान में विकल्प से मकार होता है। यथा। सवरो। समरो। स्वप्नः। सिविणो। सिमिणो। पूर्वः। पुरिमो। पुब्बो॥४६॥

वर्गौचटौ किल तवर्गगृहे क्रमेण ।

जस्यैवरो भवति सौरशषाऽक्षराणाम् ॥

स्थाने भवन्तिरणखाह जथाऽक्षराणां ।

गेहे भवन्तिघणभागरहाऽक्षराणाम् ॥५०॥

टी०—तवर्ग के स्थान में चवर्ग और टवर्ग होते हैं। यथा। नित्यं। शिबं। पथ्यं। पच्छं। विद्या। विज्जा। वन्ध्या। वज्जा। जकार के स्थान में रकार होता है। यथा। व्युत्सुनामि। बोत्तरामि। यष्टिः। लडी। रेफ। शकार और पकार के स्थान में सकार होता है। यथा। शिरं। सीसं। शयी। ससी। आमिपं। आमिसं। ह। ज। और, या के स्थान में। र। श। और, ख, होते हैं। यथा। गृहं। घरं। ज्ञानं।

षाणं । राजा । राणा । इत्यादि । ग । र । और । ह के स्थान में ।
 ष । ण । और, कृ होते हैं । यथा । गृहं । परं । करवीरः । कणवीरो ।
 कर्णीरो । करोति । कुण्ड । इत्यादि ॥ ५० ॥

चाधाऽपदस्थितिभृतां नणमाऽक्षराणां ।
 सवन्धिनौ किञ्च संहौ तु तयोर्हि लोपे ॥
 ह्रस्वाऽऽगमो भवति लोपविधौ द्विरूपं ।
 स्थाने भवन्ति बलभामडहाऽक्षराणाम् ॥५१॥

टी०—अपद के आदि में अथः स्थित. न । ण और. म. के
 सम्बन्धि । स । और । ह के लोप होने से हकार का आगम होता है ।
 यथा । प्रश्नः । पश्ये । वह्निः । बरही । कृष्णः । कण्डो । यस्मात् ।
 जडा । संयोग के अक्षर का लोप होने से अब शेषवर्ण को द्वित्व होता
 है । यथा । दुर्गः । दुग्गो । शक्रः । सको । व्याघ्रः । वाघो । म । ट ।
 और । ह के स्थान में यथा वम से । व । ल । म । होते हैं । यथा ।
 मन्मथः । वम्मथो । योदशः । सोलस । जिह्वा । निष्वा । गरुडः । गरुलो ।
 तडागः । तलाओ ॥ ५१ ॥

व्यत्यासएव पत्रयोरलयो रपीह ।

संयोगके क्त्रिदलोपविधौ द्विरूपम् ॥

द्वित्वे द्वितीयचतुर्गः प्रथमाऽ१ मि ३ संज्ञे ।

योगाऽऽद्ययोरुदितशेष विधौ सएव ॥५२॥

टी०—पकार और वकार का व्यत्यास होता है । पापं । पावं ।
 वापे । रकार और लकार का व्यत्यास होता है । यथा । पर्यङ्कः । प-
 ञ्कको । वैदूर्यः । वैरुलिओ । त्रयोदशः । तेरह । कहीं बिना लोप भी

द्वित्व होता है । यथा । नज्ञायते । णणञ्जए । तैलं । तैलं । उस द्वित्व में वर्तमान, द्वितीय और चतुर्थ व्यञ्जन को संयोगादि प्रथम और तृतीय व्यञ्जन होते हैं । और उक्त अवशेष को द्वित्व होने से वही होता है । यथा । सौख्यं । सुखं । अर्थः । अग्यो । पय्यं । पच्छं । उपाध्यायः । उवज्भाओ । पष्ठः । छठो । वृद्धः । बुद्धो ॥ उक्त अवशेष यथा । अर्कः । अको । स्वर्ग । सगं । सत्यं । सचं । सर्पः । सप्पो ॥ ५२ ॥

द्वित्वं नवै भवति प्राकृत के पदादौ ।

लोपेकृतेऽन्त्य इति न कचिदत्रशास्त्रे ॥

मध्ये पदस्य खलु नैव भवेद् द्विरूप ।

मिष्टस्वरागम इहो भयवर्णमध्ये ॥ ५३ ॥

टी०—पद के आदि में द्वित्व नहीं होता है । यथा । क्रोधः । कोहो । क्षुद्रः । खुदो । प्राकृत में कहीं २ लोप होने से पद के अन्त्य में या पद के मध्य में द्वित्व नहीं होता है । यथा । काश्यपः । कासवो । वैश्रवणः । वैसवणो । दीर्घः । दीहो । उत्कृष्टं । उकसं । संयोग के अर्थात् दो व्यञ्जनों के मध्य में मुनिवाङ्कित नियत पदों के सदृश हर एक स्वर का आगम होता है । यथा । अग्निः । अगणी । विश्लेषः । विसलेसो । वर्ष । वरिसं । श्रीः । सिरी । अर्हत् । अरिंहतो । आचार्यः । आयरिओ । खो । इच्छी । वज्रं । वडरं । कुण्यं । किसिणं । द्वा । खमा । पृथ्वी । पुहवी ॥ ५३ ॥

गृहे सदैव यवयो रिदुतौ भवेतां ।

संख्योक्तयोर्हि तिश्योर्भवतीह लोपः ॥

संख्योदितस्य किल तस्य जुगेव तत्र ।

चण्डोक्तिलक्षणविधौ सततं प्रणीतः ॥५४॥

टी०—यकार और वकार के स्थान में इत् और उत् होता है । यथा । प्रयोदशः । तेरह । अर्याधिरत् । तेतीसा । प्रयोविंशत् । तेवीसा । भवति । होई । संख्यासम्बन्धी । ति । और-य-का लोप होता है । यथा । विंशति । वीसा । पञ्चारत् । पण्य । संख्यासम्बन्धी तकार का भी लोप होता है । यथा । पञ्च पञ्चारत् । पण्य पण्य । ये सर्व प्राकृतीय कार्य चण्डाचार्य की उक्त के लक्षण में लिखे हैं ॥ ५४ ॥

संयोगाकीदिवियुजां स्वरतः परेषां ।

प्रायः कगच् जतदपाञ्चयवोलुगेव ॥

आदावपि क्वचिदथोऽस्तियुजीह लोपः ।

पूर्वोक्तनन्दकगचां जतदाऽऽदिकानाम् ॥५५॥

टी०—स्वर से परे अनादिभूत और असंयुक्त । क । ग । च । ज । त । द । प । य । व । इन वर्णों का प्रायः करके लोप होता है । यथा । काकः । काओ । कोकिला । कोइला । नागः । शाओ । पिताचः । पिताओ । गजः । गओ । शितं । सिअं । मदः । मओ । नुपूरं । येउरं । निश्चयः । शिच्छओ । देवः । देओ । कहीं आदि में भी लोप होता है । यथा । पुनः । उणो । गन्धं । अन्धं । वृषभः । उसहो । कहीं संयुक्त वर्णों का भी लोप होता है । यथा । नकधरः । अकधरो । न-मस्कारः । अमोयारो । नवकारः । अवनारो ॥ ५५ ॥

पूर्वोक्तनन्दकगचां लुकिशेष-भूतोऽ-

वर्णोऽप्यवर्णपरणिति च यत्वमत्र ॥

प्रायः पदात् क्वचिदिमेन हि लुप्तदेहाः ।

शिष्टोक्ति लौकिकमतेन तथामयोक्ताः ॥५६॥

टी०—पूर्वोक्त क. ग. च. आदिक नव वर्णों के लोप होने से शेष अक्षरों को अवर्ण परे होने से यत्व होता है। यथा । काकाः । काया । नागा । शाया । पिशाना । पिसाया । वनराजः । यणरायो । माता । माया । प्रायः । पद.के कपन से कहीं लोप नहीं भी होता है। यथा । सपयः । सवहो । शापः । सावो । ये सन कृत्य, शिष्टों की उक्ति मय शास्त्रों से मने वर्णन किये हैं ॥ ५६ ॥

यद्व्यञ्जनप्रकरणं कथितं तृतीयं ।

सत्प्राकृतोक्तिविषयं मुनिभिः प्रणीतम् ॥

तत्पूर्णमत्रमयकारचितं सुपद्यैः ।

बोधप्रदं प्रतिदिनं शिशुपाठकेभ्यः ॥५७॥

टी०—जो व्यञ्जनों का तीसरा प्रकरण कहा गया जैसा कि प्राकृत ग्रन्थों में मुनियों ने वर्णन किया है । वह मैंने विद्यार्थी बालकों के प्रतिदिन बोधदायक श्लोकबद्ध रच कर समाप्ति किया है ॥ ५७ ॥

इति श्रीपद्यप्राकृतव्याकरणे, वृहत्कविविद्याभास्कर परिद्वत गुरु लालचन्द्र वैयाकरणकेसरीविरचिते, व्यञ्जनविधानात्मको नाम तृतीयोपदेशः ॥

भाषान्तरप्रकरणं यमथप्रवक्षे ।

पद्येरहं मुनिमतेन च लोकरीत्या ॥

चाधस्स्थितस्य न हिरस्य च लोपएवाऽ ।

पभ्रंशएव मिह शब्दविदोवदन्ति ॥ ५८ ॥

टी०—भाषान्तर अर्थात् दूसरी भाषा ए जो प्राकृत भाषा के अन्तर भूत है, उनका प्रकरण जो के मुनिमत के अवलम्बी शास्त्रों की रीति से पूरित है, वो वर्णन करता हूँ और इसी प्रकरण में श्रीमान् हेमचन्द्राचार्य का मत भी दिखाता हुआ श्लोकनद्ध रचना करता हूँ। अपभ्रंसभाषा में अघो रेफ का लोप नहीं होता है। यथा। व्याघ्रः। व्याघ्रो॥५८॥

दृष्टौ यथा वररुचिप्रथितेऽपि शास्त्रे ।

नित्यं तृतीय ३ जल ४ योरयुजोरनादौ ॥

वर्गस्य चाऽद्यविहितौ प्रथमद्वितीयौ ।

पेशाचिकोक्तिविषये मयकाऽपि चोक्तौ ॥५६॥

टी०—महा कवि वररुचि के मत में जो पेशाचि की भाषा में असंयुक्त और अनादि भूत, जो, वर्ग का तृतीय और चतुर्थ वर्णों को वर्ग के आदि प्रथम और द्वितीय वर्ण का आदेश किया है। वह मने भी यहां पर लिखा है ॥ ५६ ॥

चण्डोदित प्रचुरमागधिकाविधौ च ।

स्यातां सदैवरसयो रिह वैछशौद्धौ ॥

तस्पांकृतो वररुचिप्रथितेऽपि जस्य ।

नित्यं यकार इति शब्द विधानशास्त्रे ॥६०॥

टी०—चण्डाचार्य के मत में मागधी भाषा में। र। और, स। को। छ और, श. होते हैं। उक्त भाषा में महा कविवररुचिकृत ग्रन्थों में। जकार को यकार किया है ॥ ६० ॥

तत्रैवतेन हृदयस्य कृतोहडको ।

विद्वद्वरेण कविना खलु मागधोक्तौ ॥

चण्डेन तस्य द इतीह च शौरसेन्यां ।

पैशाचिकीविषयके रणयोर्लनौ च ॥ ६१ ॥

टी०—फिर महाकवि वररुचि के मत से मागधी भाषा में हृदय शब्द को, हडक, आदेश होता है । चण्डाचार्य ने शौरसेनी भाषा में, तकार को, दकार आदेश लिखा है । और पैशाचिकी भाषा में, रकार और खकार के स्थान में, लकार और नकार का आदेश लिखा है ॥ ६१ ॥

दृष्टौ यथा वररुचीहितशब्दशास्त्रे

नित्यं तथैव तथयोस्तु दधावनादौ ।

तत्राऽयुजोः प्रकृतिसंस्कृतशौरसेन्यां

पद्यप्रबन्ध इह वैमयकाऽपिचोक्तौ ॥ ६२ ॥

टी०—जैसा वररुचि महाकवि के मान्यशास्त्र में अनादि और असंयुक्त । त । और, थ, कौ । द । और घ का होना प्रकृति संस्कृत शौरसेनी भाषा में देखा है वैसाही पद्यप्राकृतन्याकरण में मैंने लिखा ॥ ६२ ॥

तस्यां सृगालकपदस्य गृहेऽपितेनाऽऽ

देशाः कृताः किल शिआलमुखा नितान्तम् ।

चण्डेन शास्त्रविधितोविहिताऽत्रभाषा

स्वीयोक्तिलक्षणविधौ किल परिमता वै ॥

यत्संस्कृतं तु खलुप्राकृतसंज्ञकंचाऽ

पभ्रंशमागधिपिशाचिकिसौरसेन्यः ।

देशान्तरीयवचनैरचनात्मिकाश्च

टी०—उक्त सौरसेनी भाषा में महाकवि बरहनिने मुगाल शब्दका विशाल प्रभुतिक्रम आदिग किये हैं। नरदाचार्य ने पूर्व शास्त्रों की विधि से अपने निमित्त प्राकृत लक्षण में षट् भाषा कही हैं ॥ ६३ ॥
 सूक्त १. प्राकृत २ अपभ्रंश ३ मागधी ४ देशाचिकी ५ और गौर सेनी ६। ये छ भाषाये देशदेशान्तर की आँक से प्रयत्न २ पदों की रचना की और प्राचीन मुनियों को फेलाई हुई है वो उक्त विद्वान् ने भी अपने ग्रन्थ में कही हैं ॥ ६४ ॥

शब्दोऽधिकारविषयोऽथ सदैवचानं

तार्यार्थ एव विहितो मुनिनानितान्तम् ।

यत्प्राकृतीयलघुवृत्तिमयेऽपिशास्त्रेऽ

ध्यायाऽष्टमस्य शकजेऽत्रतुरीयपादे ॥ ६५ ॥

टी०—अथ श्रीमान् हेमचन्द्राचार्य का मन सूक्ष्म रूप से इस ग्रन्थ में वर्णन करता है। उक्त महामति विद्वान् ने अपनी बनाई हुई सिद्ध हेमचन्द्राभिवानस्वोपशयव्यानुशासन लघुवृत्ति के अष्टम अध्याय के चतुर्थे पाद में, अथ शब्द को अधिकार अर्थ में तथा आनन्तर्य अर्थात् परमूचक अर्थ में कहा है और हमारे महामुनि पतञ्जलि महाराज ने महाभाष्य के प्रारम्भ में अथ शब्द को केवल अधिकारार्थ वाचकही कहा है ॥ ६५ ॥

तेनाऽपि ये प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गमुख्याः

नीलाऽप्यदापनान्तान्तराः

सन्धिर्नहिस्वर इहाऽपितिवादिकानाम् ॥ ६६ ॥

सन्धिर्नहिस्वर इहाऽपितिवादिकानाम् ॥ ६६ ॥

टी०—उक्त हेमचन्द्राचार्य महाविद्वान ने भी प्राकृत में, प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, कारक, समास, तथा संज्ञा आदिक के कृत्यों को संस्कृत के तुल्य कृत्य में प्राप्त किये हैं और तिनादिकों के स्वर पर होने से स्वरों के सन्धिका होना नहीं माना है। यथा। भवति इह। होई इह ॥ ६६ ॥

आर्षं तु प्राकृतमथो बहुलं सदैव
वृत्तौ समास इति चेच्छुदीर्घसंज्ञौ ।
स्यातां मिथोऽपि बहुलं ह्युभयोस्वराणां
राऽऽदेश एव महिलाविषयेऽन्त्यरस्य ॥ ६७ ॥

टी०—आर्षं संज्ञक प्राकृत सदैव बहुल अर्थात् विकला से होते हैं। वृत्ति में और समास में स्वरों को दीर्घ और ह्रस्व विकला से होते हैं। खोलिङ्ग में वर्तमान अन्त्य रेफ को, रा आदेश होता है। यथा। गिर। गिरा। धुर। धुरा ॥ ६७ ॥

यद्व्यञ्जनं भवति तस्य लुगेव नित्यं
शब्दान्भवस्य च पदस्य तदन्त्यमत्र ।
लुगान्तरोनिर्दुरोस्तु परे स्वरे वै
पद्यात्मके भवति हैममतेन चात्र ॥ ६८ ॥

टी०—शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का लुक् नित्य होता है। यथा। यावन्। जाव। तावत्। ताव। अन्तर का और निर। दुर के अन्त्य व्यञ्जन का स्वर परे होने से लुक् नहीं होता है। अन्तरात्मा। अन्तरप्या। निरन्तरम्। दुरन्तरम्। इत्यादिककार्य हेमचन्द्राचार्य के मत से मैने भी पद्य प्राकृत व्याकरण में लिखे हैं ॥ ६८ ॥

दिक् प्रागृषोः स इह चान्त्यगतस्य नित्यं
सा व्यंजनस्यत्रयसप्तसोद्वयोर्वा

अन्त्योदितस्य किलमस्य भवेत्सदेवाऽ ।

नुस्वार एव खञ्जु हेममतेन गीतः ॥ ६६ ॥

टी०—दिक् शब्द और प्रागृष शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को, म
आदेश होता है । यथा । दिक् । दिमा । प्रागृष् । पाउसो । आयुष्
और अप्पारम् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को, सकार विकल्प से होता है ।
दीर्घायुः दीर्घाउभं । दीर्घाऊ । इत्यादि । अन्त्याभित मकार का अनु-
स्वार होता है । गलम् । गलं । कुलम् । कुलं । ये सर्वे वृत्त्या हेमच-
न्द्राचार्य के मत से मैने भी स्लोकबद्ध रचे हैं ॥ ६६ ॥

वर्णो परे ङ अ ण नां सततं भवेच्चाऽ

नुस्वार एव पद सन्धिविधौ सदेव ।

श्रीहेमचन्द्रगचितं लघुशुक्तिरूपे

शब्दानुशासनविधौ विहितस्तथाऽत्र ॥ ७० ॥

टी०—ङ । न । ण । और न के स्थान में व्यञ्जन पर होने से
अनुस्वार होता है पद में, वा, पदसन्धि में । यथा । पठति । पंति ।
कञ्चुकः । कञ्चुओ । पण्मुख । छंमुहो । सन्ध्या । संष्ठा । ये सर्वे
कार्ये । श्रीहेमचन्द्राचार्य के रचे हुये लघुशुक्तिरूप शब्दानुशासनं प्राकृत
शास्त्र में लिखे हैं । यद्यपि इस पद्य प्राकृत व्याकरण में प्रायः करके
हेमाचार्य महाविद्वान्ही के मत से मैने उपदेश लिखे हैं तथापि विशेष
कृत्यों में से संक्षेपतर यहां पर भी दिवाये हैं ॥ ७० ॥

एवं त्रिलिङ्गविषयेऽत्रसदेवशब्द-

रूपाणि यानि त्रिहितानि तु प्राकृतीये ।

श्रीहेमचन्द्ररचिते किल शब्दशास्त्रे

संदर्शयामि खलु तान्यपि बोधवृध्यै ॥ ७१ ॥

टी०—इमी प्रकार से तीनों लिङ्गों में जो अकारान्त, इकारान्त
इकारान्त और उकारान्त और आकारान्त आदि शब्दों के रूपों को
श्रीहेमचन्द्राचार्य ने निररचित प्राकृत शास्त्र में कहे हैं उनमेंसे अका-
रान्त, आकारान्त शब्द रूपों को श्लोक १६ की टीका में लिख चुका हूं
और शेष रहे हुआँ को यहां पर विद्यार्थियों के बोधवृद्धि के अर्थ दि-
लाता हूं। यथा। पुलिङ्ग वाचक इकारान्त, अग्नि शब्द के रूप। १ अग्नी।
अग्नीओ। अग्नीणो । १। अग्निं। अग्निणो । २। अग्निणा । अग्नी हिं। ३।
अग्निणो । अग्निस्त । अग्निण। अग्निणं । ४। अग्निणो। अग्निहितो ॥ ५ ॥
पटी चतुर्थी वत् । अग्निमि । अग्नीसु । अग्नीसुं ॥ ७ ॥ सम्बोधन
में । हे अग्नि । हे अग्नीओ ॥ ८ ॥ अत्र उकारान्त पुलिङ्ग वाचक ।
मधुः । शब्द के रूप । यथा । प्रथमा। महू । महूओ । महूणो । १ ।
महुं । महूणो । २। महूणा महू हिं । ३। पद्यमी । महूणो। महूहितो । ५।
महूणो । महूस्त । महूणं। महूण । ६। महूए। महूमि। महूसु। महूसु। ७।
सम्बोधन में । महू । महूओ । ८। अत्र पुलिङ्ग वाचक ऋकारान्त कर्तृ
शब्द के रूप यथा प्रथमा के रूप। कत्तारो। कत्तुणो। १। कत्तारं। कत्तुणो। २।
कत्तुणा। कत्तारेण। कत्तुहिं। ३। पं. कत्तुणो कत्तुहिं तो। ५। कत्तुणो। कत्तारस्त।
कत्तुणं। कत्तारे। कत्तुमि। कत्तुसुं कत्तुसु। ७। सम्बोधन में । हे कत्तार ।
हे कत्तारा । ८। अत्र स्त्रीलिङ्गवाचक ईकारान्त शब्द नदी । शब्द के
रूप । रण्ई । रण्ईओ । रण्ई उ । रण्ई ॥ १ ॥ रण्ईं । रण्ईओ । रण्ईउ ।

रई ।२। रईए । रईहिं । रईहिं । रईहि ।३। पञ्चमी । रईए । रईहिं ती ।५।
 रईए । रईणं । ६ ॥ रईए । रईसु । रईसुं ।७। सम्बोधन में । रई ।
 रईओ । रईउ ॥ अत्र स्त्रीलिङ्गवाचक उकारान्त धेनु शब्द के रूप
 यथा । धेणू । धेणूओ । धेणूउ । धेणू ।१। धेणू । धेणूओ । धेणूउ ।
 धेणू ।२। धेणूए । धेणूहिं । धेणूहिं । धेणूहि ।३। पंचमी । धेणूए ।
 धेणूहितो ।५। धेणूए । धेणूणं ।६। धेणूए । धेणूसु । धेणूसुं ।७। सं-
 बोधन में । धेणू । धेणूओ धेणूउ ॥ अत्र स्त्रीलिङ्ग वाचक अकारान्त
 शब्द । पीतृ शब्द के रूप । पोआ । पोआ ।१। पोअं । पोयें । २ ।
 पोआए । पोएहिं । पोएहिं पोएहि ।३। पोआए पोआहितो ।५। पोआए ।
 पोआणं । पोआण । ६ । पोआए । पोआसु । पोआसुं ।७। संबोधन में ।
 पोअ । पोआ । ८ । अत्र नपुंसकलिङ्ग वाचक इकारान्त अक्षि शब्द
 के रूप । अक्षिं । अक्षि । अक्षीणि । अक्षीइं । अक्षीइ । १ । अक्षिं ।
 अक्षि । अक्षीणि । अक्षीइं । अक्षीइ ।२। और सब विभक्तियों के रूप
 पुल्लिङ्ग वत् जान लेना ॥ अत्र नपुंसकलिङ्ग वाचक उकारान्त मधु शब्द
 के रूप । महूं । महु । महुणि । महूं महूं ।१। महूं । महु । महुणि ।
 महूं । महूं ।२। और सब विभक्तियों के रूप पुल्लिङ्ग के तुल्य 'स'
 मुक्त लेना ॥ ७१ ॥

यत्प्राकृतीयरचने कचिदत्र सूत्र-

वृत्त्याऽनुरोधसहितं श्रुतभङ्गमीदृश ।

तत्रस्थलेविनिमयस्स्वरवर्णयोश्च

साहित्यशास्त्रवचनेषु विविच्य नीतः ॥ ७२ ॥

टी०—इस पद्य प्राकृत व्याकरण के बनाने में किमी जगह पर सूत्र वृत्ति के तात्पर्य स्पष्ट आने से जो छन्दोभङ्ग होने का देखकर

उस स्थल में स्वर और वर्ण को साहित्यशास्त्र के बचनों में विचार करके रक्खा जैसा कि साहित्य में बहुत जगहों में लिखा है कि किसी जगह दीर्घ को ह्रस्व मान लेना किसी जगह ह्रस्व को दीर्घ समुक्त कर निर्वाह कर लेना ॥ ७२ ॥

कुत्रापि दीर्घविषयं लघुना विरच्य

निर्वाहमत्र च कृतं गुरुणा लघोर्वै ।

कुत्रापि सस्वरविधौ खलु निस्स्वरत्वं

मत्वा सुवृत्तविषयो विश्लीकृतोऽसौ ॥७३॥

टी०—किसी जगह पर दीर्घ विषयक वर्ण को लघुसंज्ञा से विरचित करके और किसी जगह पर लघु को दीर्घ भाव से वर्णन करके निर्वाह किया है किसी जगह पर सस्वर को निस्स्वर और निस्स्वर को सस्वर मानकर छन्द को सम्पूर्ण किया है ॥ ७३ ॥

या चेहमत्र विदुषः शिरसा प्रणम्य

ग्रन्थे मदीयरचितेऽप्युदितं विलोक्य ।

सन्त्यज्य पक्षमिति तैस्सुदलं प्रदेयं

मुद्रापणेपुनरपीह तदाऽऽहरिष्ये ॥७४॥

टी०—भूमण्डल के विद्वानों को मैं शिर से प्रणाम करके याचना करता हूँ कि भेरे बनाये हुये पद्य प्राकृत व्याकरण ग्रन्थ में जो मैंने पूर्वोक्त वृत्तान्त लिखे हैं यदि इसके सिवाय भी कोई असङ्गत रूप दृष्टि गोचर हो, तो पक्षपात को त्याग करके दया की दृष्टि से मुझको कृपापत्र देना चाहिये ताकि इस ग्रन्थ को दूसरी बार छपाने के समय में आप शिष्ट विद्वानों के लिखे हुये वृत्त को उसमें सामिल करदिया जावेगा ॥ ७४ ॥

भाषान्तरप्रकरणं मुनिभिः प्रणीतं ।

पद्यैर्मया रचितमत्र सुपूर्णमास ॥

पद्मधनन्दशशि १६५६ सम्मितवत्सरेपि ।

मासे शुचौ शुचिदले दशमीतिथौ च ॥७५॥

टी०—भाषान्तर प्रकरण जो कि पूर्वे मुनियों का कहा हुआ है, यह श्लोकयद्ध मनें रचा है, जो सम्बत् १२५६ आषाढ शुदि दसमी तिथि के दिन सम्पूर्ण हुआ है ॥ ७५ ॥

पद्यात्मकं मनुजभाषितभाष्यजुष्टं ।

श्रीयोधसंज्ञकपुरे मरुर्नावृतीह ॥

विद्याविभावसुवृहत्कविपरिडतेन ।

यद्दालचन्द्रकविना रचितं मयेदम् ॥७६॥

टी०—श्लोकयद्ध प्राकृतव्याकरण भाषा टीका सहित को, मारवाड़ देश के अन्तर्गत जोधपुर सहर में, विद्याभास्कर, वृहत्कवि परिडंत लालचन्द्रकवि धाम के मनें रचा ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मप्राकृतव्याकरणे, वृहत्कविविद्याभास्करपरिडंतगुरुलालचन्द्रवैयाकरणकेशरीविरचिते भाषान्तरप्रकरणात्मको नाम चतुर्थो-पदेशः ॥ ४ ॥ शमस्तु पाठकानाम् ।

सूचना ।

इस पद्य प्राकृत व्याकरण की रजि-
स्ट्री एक्ट २५ नियमानुसार कराई है सो
इस ग्रन्थ को छापने छपवाने का अधि-
कार सिवाय ग्रन्थकर्ता के किसी को भी
नहीं है ॥

पुस्तक, पद्यप्राकृतव्याकरण भाषा टीका
सहित मिलने का पता—

पुस्तकालय, दिल्ली

पुस्तकालय, दिल्ली

(राजपुताना)

बाहिर भगानेवालोंको—

वी. पी. पोस्ट तथा डाकव्यय अलग देना पड़ेगा ।

